

लिंग और पाठ्यचर्या*

सबके लिए समानता, मौलिक अधिकार और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की पुनरावृत्ति के बाद भी राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा (NCF) में भारतीय परम्परा, नैतिक शिक्षा और धार्मिक शिक्षा के गिरते स्तर पर दिया गया बल महिला सशक्तिकरण के सक्षम साधन के तौर पर शिक्षा के उभरने की सम्भावना को बाधित करता है। संक्षिप्त रूप में, यह लेख नारी शिक्षा के सम्बन्ध में 'नई शिक्षा नीति 1986' की भविष्य की परिकल्पना एवं नीतिगत संरचना पर पुनर्विचार करते हुए, स्कूली पाठ्यपुस्तकों के वास्तविक लेखन पर प्रगतिशील नीतिगत व्याख्यायन के प्रभाव का विश्लेषण करता है, खासकर उनका जो भाषा शिक्षण से सम्बन्धित हैं।

सरकार द्वारा 14 नवम्बर, 2000 को प्रस्तावित की गई राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (NCF) ने सामाजिक विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों की विषयवस्तु पर विचारणीय विवाद और बहस को उत्पन्न किया है। विशेषकर एनसीएफ (NCF) को इतिहास की ओर साम्प्रदायिक व ब्राह्मणवादी दृष्टिकोण अपनाए जाने और अन्वेषण की ऐतिहासिक पद्धति को नौकरशाही सम्बन्धी और राजनीतिक हस्तक्षेप द्वारा गम्भीर रूप से कमजोर किए जाने का दोषी पाया गया है। हालाँकि प्राथमिक उद्देश्य इतिहास के प्रश्न और एनसीईआरटी (NCERT) के द्वारा अनिवार्य बनाए गए अपमार्जन रहे हैं, जो जाँच के तहत नहीं आ पाया है वह ये है कि किस प्रकार राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा द्वारा लैंगिक रूप से न्यायसंगत शिक्षा (gender-just education) की सरकार की स्वयं की प्रतिबद्धता को जोखिम में डाला गया। सबके लिए समानता, मौलिक अधिकारों की रक्षा और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की बात की पुनरावृत्ति के बावजूद, दस्तावेज का गहन अध्ययन, महिलाओं द्वारा परिवार में और देश में कुशल माताओं, पत्नियों और पुत्रियों के रूप में 'पारम्परिक' सामाजिक भूमिकाएँ निभाए जाने सम्बन्धी दिशा सुनिश्चित करने की ओर इशारा करता है।

इस लेख को दो भागों में बाँटा गया है। पहले भाग में यह समझने की कोशिश की गई है कि एनसीएफ द्वारा प्रमुखता से जिन बिन्दुओं पर जोर दिया गया है, उनका भावी शिक्षा की सम्भावित विषयवस्तु पर कितना प्रभाव पड़ेगा। इसमें विवेचना की गई है कि भारतीय परम्परा,

* *Economic and Political Weekly* पत्रिका के अप्रैल, 2002 के अंक से उद्धृत।

नैतिक शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में धार्मिक शिक्षा के गिरते स्तर पर दिया गया बल महिला सशक्तिकरण के सक्षम साधन के तौर पर शिक्षा के उभरने की सम्भावना को बाधित करता है। यदि एनसीएफ की तुलना उन्नीसवीं शताब्दी के औपनिवेशिक भारत में नारी-शिक्षा के बारे में हुई बहसों के साथ की जाए तो यह स्पष्ट होता है कि यह नया विमर्श, मूल रूप में, पूर्व की चिन्ताओं और समान रूप से पहले से दिए जा रहे समाधानों के अतिरिक्त कुछ नहीं है। दूसरे भाग में, इन बिन्दुओं के प्रतिवाद के रूप में, संक्षिप्त रूप से, नई शिक्षा नीति की भविष्य की परिकल्पना और नीतिगत ढाँचे को, नारी शिक्षा के सन्दर्भ में देखा गया है। वस्तुतः इसमें, विशेषकर भाषा सम्बन्धी ज्ञान दिए जाने के सन्दर्भ में, स्कूली पाठ्यपुस्तकों के लिखे जाने की वास्तविक स्थिति पर प्रगतिशील नीतिगत शब्दाडम्बर के प्रभाव के 'निथरकर नीचे पहुँचने' का विश्लेषण किया जाएगा। जैसा कि यह पुनरावलोकन स्पष्ट करता है कि 1986 के नीति सम्बन्धी सुधारों के एक दशक बाद भी पाठ्यपुस्तकों में लिंग को जिस प्रकार व्यवहृत किया गया, उसके कोई महत्वपूर्ण सकारात्मक परिणाम नहीं आए। इस विश्लेषण से यह समझ में आता है कि भले ही महिलाओं के बारे में प्रतिगामी विचारों के लिए एनसीएफ की आलोचना की जाए, परन्तु यह मानने का कोई कारण नहीं है कि केवल प्रगतिशील आख्यान स्कूली पाठ्यचर्या में गहरी पैठी हुई लिंग सम्बन्धी रूढ़ियों (gender stereotypes) को बदल सकता है।

परम्परा का बोझ

जैसा कि सर्वविदित है कि उन्नीसवीं सदी के औपनिवेशिक भारत में नारी-शिक्षा एक अहम मुद्दा बनकर उभरा। तत्कालीन समाज सुधारकों और ब्रिटिश शासन द्वारा महिलाओं एवं कन्याओं के लिए शिक्षण संस्थाएँ स्थापित की गईं। राष्ट्रवादी चेतना के व्यापक मानदण्ड के अन्तर्गत, तथाकथित प्रगतिशील तत्वों और रूढ़िवादी पुनरुत्थानवादियों के मध्य सम्पूर्ण शताब्दी के दौरान, किन्तु विशेषकर शताब्दी के दूसरे अर्ध-भाग में नारी शिक्षा की प्रकृति और विषयवस्तु से सम्बन्धित प्रश्न गर्मागर्म बहस का विषय बने रहे। दोनों गुटों के मध्य वैचारिक मतभेद से आगे सहमति के कुछ उभयनिष्ठ बिन्दु भी रहे। सबसे पहले दोनों पक्षों में इस बात पर सहमति बनी कि समकालीन परिस्थितियों में नारी शिक्षा का अभाव, भले ही इसके लिए ऐतिहासिक तौर पर जो भी कारण जिम्मेदार था, इतिहास के क्रमिक उद्भव में भारत की सभ्यता की निम्न स्थिति

का द्योतक रहा। परिणाम स्पष्ट थे। यदि भारत का लक्ष्य पश्चिमी देशों की भौतिक प्रगति की बराबरी में आना था तो राष्ट्र की महिलाओं को शिक्षित करना अत्यावश्यक था। साथ ही नारी-शिक्षा को विदेशी औपनिवेशिक शासन या ईसाई धर्म प्रचारकों के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता था। क्योंकि यदि शिक्षित होने के प्रयास में, भारतीय महिला स्वयं को केवल श्वेतवर्णी पाश्चात्य महिला की छवि में ढाल लेती, तो इससे स्थानीय समाज या आरम्भिक भारतीय देश के लिए पहचान का नया संकट खड़ा हो सकता था। फार्मूलाबद्ध शब्दावली में इस बहस का सार आसानी से निकाला जा सकता है : नारी-शिक्षा के लिए जबरदस्त 'हाँ' परन्तु अनियन्त्रित पाश्चात्य शिक्षा के लिए उतना ही सुस्पष्ट 'ना'।

शिक्षा की विषयवस्तु सम्बन्धी चिन्ता केवल स्थानीय पहचान के लिए खतरे के तौर पर नहीं थी, आधुनिकतावादी हमले के भय से भी इसे शक्ति मिली थी जो कि मौजूदा सामाजिक व्यवस्था पर तार्किक मानवतावादी आलोक का संवाहक था— जो जाति, जातीयता या लिंग से जुड़ी शक्ति के वर्गीकरण को बदलने वाला और 'अनोमी'¹ की स्थिति पैदा करने वाला था। आश्चर्य नहीं कि भारतीय नारी के अनुकूल शिक्षा को परिभाषित करने के सन्दर्भ में बढ़ती हुई चिन्ता दिखाई देती थी।

माहरत्ता ने 1887 में बम्बई में नारी हाईस्कूल लाए जाने पर गरजते हुए उद्घोष किया था : “हमारी लड़कियों को अँग्रेज़ीदाँ बनाने अथवा पुरुषों के तौर-तरीकों के अनुसरण का पाठ पढ़ाए जाने से कुछ भी हासिल नहीं किया जा सकता।” स्कूलों को हमारे पारिवारिक जीवन के प्रति घृणा नहीं पैदा करनी चाहिए। यह ‘बहुत निन्दनीय’ था कि नारी शिक्षा की विषयवस्तु में ‘आर्यों की पुरातन धार्मिक नैतिकता सम्बन्धी उच्च सिद्धान्तों’ तथा इसी तरह युवा महिलाओं के लिए पवित्र पतिव्रता व्यवहार अन्तर्निविष्ट करने वाले पाठ प्रत्यक्ष रूप से अनुपस्थित थे।

माहरत्ता का प्रकट रूप से ‘प्रतिक्रियावादी’ स्वर अप्रत्याशित नहीं था। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में भारतीय राष्ट्रीयता के अति सम्मानजनक व्यक्तित्व दादाभाई नौरोजी ने भी इसी तरह की चिन्ता को बड़े शालीन ढंग से मुखर किया था। “ऐसा समय भी आएगा जब भारत के लोग नारी-

¹ मोटे शब्दों में इसे दिशाहीनता कहा जा सकता है।

शिक्षा के लाभ को सभ्यता के विकास और सामाजिक सुख-शान्ति तथा प्रगति को आगे बढ़ाने में एक बड़ी सामाजिक आवश्यकता के रूप में देखेंगे और यह समझेंगे कि नारी को भी पुरुषों की तरह इस संसार के सभी अधिकारों, विशेषाधिकारों और दायित्वों के उपयोग और उनका लाभ उठाने का उतना ही अधिकार था, और पुरुष व स्त्री दोनों अपने अपने निर्धारित क्षेत्र में सार्वजनिक कल्याण के लिए कार्य करेंगे।" *किन्तु अभी यह समय नहीं आया है... कुशल और शिक्षित माताएँ ही कुशल और शिक्षित सन्तान को पाल-पोस कर बड़ा कर सकेंगी।"*

1916 में काकेनाड के एक जमींदार श्री केबीवी कृष्णा राव ने लिखा— "कुशल माता और पत्नी बनने के लिए लड़कियों को अच्छी तरह तैयार करने के लिए लड़कियों की शिक्षा को विभिन्न वर्गों की लड़कियों की परिस्थितियों के अनुसार विभिन्न दिशाओं में सुधारने की आवश्यकता है। यह बुद्धिमानी न होगी कि हम उनको ऐसी शिक्षा दें जो उनमें ऐसी रुचियाँ जगा दे जिनको अपने भावी जीवन में सन्तुष्ट करने का उनको अवसर ही न प्राप्त हो।"

प्रयोजन सुस्पष्ट है। नारी शिक्षा स्वयं अपने में कोई ध्येय नहीं है अपितु यह परिवार और राष्ट्र की प्रगति के ध्येय की प्राप्ति के लिए एक साधन है। यद्यपि नौरोजी ने कहा कि महिलाओं को भी पुरुषों को उपलब्ध सभी अधिकारों के उपभोग की स्वतन्त्रता है, किन्तु इसमें कोई त्रुटि नहीं है कि नारी पर देश के लिए सन्तानों को पालने का उत्तरदायित्व भी है। कोई इस भय की उपेक्षा नहीं कर सकता कि 'अँग्रेज़ीदाँ' भारतीय महिला अपनी संस्कृति और परम्परा को त्यागकर भारतीय पुरुषों की रुचियों को अर्जित करने की ओर उन्मुख हो जाए, जिसे भारतीय पुरुष वर्ग पूर्ण करने में समर्थ न हो सके।

एक नई राष्ट्रीय पितृसत्ता की रचना के लिए बौद्धिक श्रम मूलभूत था, जिसने पाश्चात्य महिला से प्राच्य नारी में अन्तर किया। जैसा कि राम मोहन राय ने, लगभग अर्ध शताब्दी पूर्व स्पष्ट कर दिया : "हिन्दू नारी बहुत हद तक पुरुषों से कई गुना अधिक आत्म-त्याग करने वाली है" और "उसकी पति-भक्ति तथा आध्यात्मिक बल" ही उसकी प्राच्य नारी होने की पहचान है।

एनसीएफ भी 11वीं शताब्दी की याद दिलाता है। इसकी भी पूरी दिलचस्पी ऐसी पाठ्यचर्या की तलाश में थी जो स्वयं-सिद्ध और असन्दिग्ध भारतीय परम्परा की सीमा में हो। आरम्भिक बहस के ईमानदार संकोची स्वर के साथ पाठ्यचर्या के 'भारतीयकरण' के दोष से बचते हुए, पूरे दस्तावेज में, तकनीकी आधुनिकता के समक्ष भारतीय नारीत्व की सर्वोत्तम विशेषताओं को बनाए रखते हुए, उसको अँग्रेज़ीदाँ होने से बचाने का आग्रह है।

जाहिर तौर पर, समकालीन भारतीय समाज में 'धार्मिक-तात्विक स्वभाव' से स्वयं को दूर कर लिए जाने के बाबत गहरी चिन्ता है :

तथापि, समकालीन भारतीय समाज के एक बड़े हिस्से ने धार्मिक-तात्विक लोकाचार, सामाजिक रूपरेखा की चेतना और पूर्व की विरासत की समझ से दूरी बना ली है। अनजाने तकनीकी लोकाचार से प्रभावित होकर माता-पिता एवं शिक्षण संस्थान केवल उच्च स्तरीय तकनीकी ज्ञान अर्जित करने पर जोर देते हैं। हालाँकि, पाश्चात्यीकरण का प्रभाव समाज के सम्भ्रान्त लोगों पर ही पड़ा है, जन सामान्य इस प्रकार के विकास से अनभिज्ञ ही रहा है। इस स्थिति ने ग्रामीण और शहरी, कृषक और औद्योगिक, अमीर और गरीब और साक्षरों और अनाक्षरों के बीच अन्तर की ओर ध्यान केन्द्रित किया है। इस प्रकार भारतीय कृषक समाज की संरचना के प्रभुत्व को बाधित किया गया है। औपचारिक कार्यप्रणाली में कोई भी व्यक्ति उन पर अपना अधिकार जता सकता है जो अन्यथा, आयु में और सामाजिक ढाँचे में उससे ज्येष्ठ हों, किन्तु कृषक समाज में, आने वाली पीढ़ियाँ समग्र रूप से परिवार या जाति द्वारा निर्धारित लक्ष्यों और रोजगार को ही अपनाती थीं।
(*Context and Concerns*, p 3)

दूसरे शब्दों में शिक्षा के सशक्त रूप से अस्थिर करने वाले प्रभाव को सीमित करने के लिए परम्परा के रूपक का आह्वान किया गया। एनसीएफ की इच्छा थी कि शिक्षा को इसके पारम्परिक पद पर ही रखा जाए ताकि शक्ति सम्बन्धों को पारम्परिक जातिगत समाज के अन्तर्गत फिर से उत्पन्न किया जा सके और उनका रख-रखाव किया जा सके। एनसीएफ ने पाश्चात्य सभ्यता से सम्पर्क को अवांछित सामाजिक संघर्ष और उत्पात के रूप में देखा और इसके लिए पाश्चात्यीकरण को ही एकल कारण माना तथा चाहे समाज के स्तर पर या परिवार के स्तर पर एक गम्भीर खतरे के रूप में, स्थापित प्रभुत्व के लिए चुनौती के रूप में परिभाषित किया। यही एनसीएफ पर छाए हुए भय का मूल बिन्दु है : किस प्रकार 'आर्यों की धार्मिक

नैतिकता के उच्च सिद्धान्तों' को त्यागे बिना, माहरता की अपेक्षानुसार, एक 'विदेशी तकनीकी लोकाचार' को अपनाया जाए।

यह कहना व्यर्थ होगा, कि इस ऊहापोह में शिक्षा को मुक्ति या परिवर्तन के एक प्रबल कारक के रूप में परिभाषित किए जाने को भुला दिया गया। एनसीएफ दस्तावेज में कहीं भी शिक्षा को अधिकार प्रदान करने या सामाजिक गतिशीलता लाए जाने या समतावादी समाज की स्थापना के साधन के रूप में नहीं देखा गया।

रोचक बात यह है कि दस्तावेज की रूपरेखा में 'लड़कियों के लिए शिक्षा' का अनुभाग सामाजिक एकजुटता के लिए शिक्षा के वृहत शीर्षक के अन्तर्गत आया है (न कि परिवर्तन या विकास के अन्तर्गत)। जो दुविधा सामने रखी गई है वह नौरोजी के नारी-शिक्षा पर दिए गए वक्तव्य के समान ही है। और यही स्थिति उसके स्वरूप के बारे में है : यह लैंगिक समानता के वृहत और अमूर्त व्याख्यान से आरम्भ होता है और फिर शीघ्र लिंग विशेष से जुड़ी विशिष्ट भूमिकाओं पर जोर देने तक सीमित हो जाता है।

भारत के संविधान के अन्तर्गत स्त्री और पुरुष दोनों के बीच समानता एक मौलिक अधिकार है। शिक्षा को अधिक से अधिक, विशेषकर ग्रामीण लड़कियों को मुहैया कराया जाना, लिंग आधारित सभी भेदभाव, और लिंग आधारित पूर्वाग्रहों को स्कूल की पाठ्यचर्या से हटाया जाना नितान्त आवश्यक है। इसके अतिरिक्त, यह सबसे उपयुक्त होगा कि भारतीय परम्परा के अनुसार प्रत्येक लिंग की सर्वश्रेष्ठ विशेषताओं को मान्यता दी जाए और उनका पोषण किया जाए।

आखिरकार, भारत में महिलाओं को मतदान का अधिकार, पश्चिमी देशों के प्रतिकूल, बिना कोई लम्बी लड़ाई लड़े मिल गया। लिंग-समावेशी (gender inclusive) और लिंग-संवेदनशील (gender sensitive) पाठ्यचर्या रणनीतियों को विकसित और कार्यान्वित करने की आवश्यकता है। ऐसा करने से लड़कियों और लड़कों की एक ऐसी पीढ़ी का विकास होगा जो समान रूप से सक्षम हैं और एक दूसरे के प्रति संवेदनशील हैं। साथ ही, जो देखभाल और साझा करने वाले माहौल में बराबरी के साथ बड़े हुए हों न कि प्रतिद्वंदियों जैसे।

इसमें और नौरोजी के विचारों में अन्तर शिक्षा और लैंगिक समानता की धारणाओं द्वारा पैदा किए जा सकने वाले सामाजिक संघर्ष के बारे में इसकी अत्यधिक जागरूकता के सन्दर्भ में है। इस प्रकार, नारी-शिक्षा की वैचारिक स्थिति सामाजिक एकजुटता के निर्देश के अन्तर्गत आती है। और जो आदर्श कूटनीति का पथ है प्रकट रूप से नारी की समानता की ओर अग्रसर है तथा आवेशित करने की राजनीति की प्रासंगिकता को नकारने का है। पश्चिमी देशों से विलग, जहाँ महिलाओं के अधिकारों की माँग परिवारों के टूटने में परिलक्षित हुई है, भारत में महिलाओं को अपने अधिकारों के लिए विरोध की जरूरत नहीं पड़ी, क्योंकि, जैसा कि मतदान के अधिकार के सम्बन्ध में है, सदा से उदार कुलपतियों द्वारा स्वाभाविक रूप से न्यायसंगत अधिकार उन्हें ससमय दिए जाएँगे।

एनसीएफ पश्चिमी सभ्यता और भारतीय परम्परा के बीच सहज द्विविभाजन को उजागर करता है, जो त्रुटिपूर्ण तरीके से पंथ निरपेक्ष सामाजिक रुझानों को अनिवार्य सांस्कृतिक अन्तर को चिह्नित करने वाला मानता है उदाहरणस्वरूप निम्नलिखित विलाप को देखिए : "संयुक्त और विस्तारित परिवार की तुलना में, समाज में छोटे परिवार, एकल माता-पिता, अविवाहित सम्बन्धों की घटनाएँ, इत्यादि हो रही हैं..."

विडम्बना जितनी करुणाजनक है उतनी ही गहन है : भारत सरकार जहाँ घरेलू हिंसा और लिंग सुनिश्चित करने वाली तकनीकों के विरुद्ध नियम बना कर स्वयं के आधुनिक होने का प्रमाण प्रस्तुत कर रही है, यह एक संस्था के तौर पर परिवार की किसी प्रकार की आलोचना के द्वार भी बन्द कर देती है, जिसे वैध बनाने के लिए भारत में नारी-आन्दोलन काफी समय से हक की लड़ाई लड़ रहा है।

नैतिक शिक्षा के रूप में धार्मिक अनुदेश

नैतिक शिक्षा और धार्मिक शिक्षा के बीच का अन्तर लोप हो जाने से दस्तावेज हमारे समाज में लड़कियों और महिलाओं को शिक्षित किए जाने के बाबत नए प्रश्न उठाता है।

नैतिक शिक्षा और धार्मिक शिक्षा किसी भी स्तर पर अध्ययन या परीक्षण का अलग विषय नहीं बनेंगे। इनका समायोजन शैक्षिक क्षेत्रों के अध्ययन के सभी विषयों में और सभी सह-शैक्षिक क्रियाकलापों एवं योजनाओं में इतने विवेकपूर्ण ढंग से किया जाएगा कि प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से उद्देश्यों की प्राप्ति, कक्षा में, स्कूल की प्रार्थना सभाओं में, खेल के मैदानों में और अन्य इसी प्रकार के स्थानों में ही हो जाएगी। (अध्याय 2, पृष्ठ 35)

ऐसे समाज में, जिसमें परम्परा और धार्मिक पहचान को बनाए रखने के विशिष्ट ऐतिहासिक दायित्व को महिलाओं ने वहन किया हो, एनसीएफ पूर्वाग्रह को मजबूत करने का लक्ष्य रखता है। यह अन्य धार्मिक व्यवस्थाओं में महिलाओं को प्राप्त गौण स्थान को नजरअन्दाज करता है। इसे 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति के समक्ष रखकर देखा जा सकता है : "शिक्षा भूतकाल की संचित विकृतियों को निष्प्रभावित करेगी।" वास्तव में, एनसीएफ पूर्ववर्ती नीति के विनम्र वचन से हटने से भी निकृष्ट कार्य करता है : यह धार्मिक पहचान को बनाए रखने वाली कार्य-सूची को, सामाजिक अन्तःक्रिया के ताने-बाने से कक्षा की परिधि तक विस्तार देता है।

निकृष्ट यह है कि यह शैक्षिक उपलब्धियों के सूचक के रूप में, आत्मिक उपलब्धि की अस्पष्ट और त्रुटिपूर्ण संकल्पना को प्रस्तुत करता है। आश्चर्य नहीं, कि उक्त दस्तावेज इस तथ्य से अनजान बना रहता है कि इस नूतन सृजित बौद्धिक कुतर्क को वास्तविकता में कैसे बदला जा सकेगा। यह इस बात पर भी चुप रहता है कि किस प्रकार बौद्धिक कुतर्क, यह मानते हुए भी कि यह सुनिश्चित, उद्देश्यपूर्ण विषयवस्तु है, का मूल्यांकन हो सकेगा और यह किसके द्वारा किया जाएगा। क्या ऐसा होगा कि महिलाओं को यह सिद्ध करने के लिए अपने निस्वार्थ उत्सर्ग की क्षमता, और भक्तिपूर्ण विशेषताओं का उच्च आदर्श प्रस्तुत करना होगा? इसके बदले में, जो महिलाएँ परम्परा का उल्लंघन करेंगी उनका आकलन कैसे किया जाएगा?

॥

एनसीएफ निस्सन्देह 1986 की शिक्षा नीति से पीछे ले जाने वाला बहुत बड़ा कदम है। 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने शिक्षा को "नारी की स्थिति में मूलभूत परिवर्तन का वाहक" माना था। इसका तर्क था "राष्ट्रीय शिक्षा-पद्धति नारी के सशक्तिकरण में सकारात्मक हस्तक्षेप

करनेवाली भूमिका निभाएगी। लेकिन हमें यह आँकना होगा कि इसके प्रगतिशील नीतिगत शब्दाडम्बर का प्रभाव वास्तव में पाठ्य-पुस्तकों के तैयार किए जाने पर कितना पड़ा है? क्या यह वास्तव में “पूर्व की संचित विकृतियों के प्रभाव को समाप्त करता है?” क्या वास्तव में लिंग को इस तरह दर्शाया गया है जो महिलाओं और लड़कियों के पूर्व के चित्रण से महत्वपूर्ण ढंग से अलग था?

राष्ट्रीय शिक्षा नीति के निरूपण के बाद के दशक में कक्षा 3, 5 और 8 के लिए एनसीईआरटी की भाषा की पाठ्यपुस्तकों को निम्न प्रकार देखा जा सकता है। भाषा सम्बन्धी पाठ्यपुस्तकों पर ध्यान देने का औचित्य यह है कि नारीवादी शैक्षणिक कार्यप्रणाली को सुदृढ़ करने के सन्दर्भ में भाषा ही मुख्य समस्या है। यह लिंग सम्बन्धी पहचानों और शक्ति-सम्बन्धों को मजबूत बनाने हेतु एक उपयुक्त स्थल है।

कहानियाँ और विवरण सभी संस्कृतियों को अर्थ प्रदान करते हैं। अपने अनुभवों को व्यवस्थित कर उनकी व्याख्या करने से विश्व की सही समझ आती है। भाषा को उसकी शक्ति, किसी ऐसी चीज को मूर्त रूप देने से आती है जिसका निर्माण प्राकृतिक और स्व-स्पष्ट प्रतीत होने वाली किसी वस्तु के रूप में ठीक उस बिन्दु हुआ है, जहाँ यह निर्माण सबसे ज्यादा सन्दिग्ध हो। एक शब्द में कहा जाए, तो भाषा लैंगिक असमानताओं को प्राकृतिक बनाती है।

भाषा की पाठ्यपुस्तकों की प्रस्तावना में यह जोर देकर कहा जाता है कि उद्देश्य यह है कि लड़कियों की सोच की परिधि को विस्तार दिया जाए, उनके विचार करने की योग्यता/क्षमता बढ़ाई जाए और उनमें मूल्यों को स्थापित किया जाए। प्रस्तावना में जिन मूल्यों का विवरण दिया गया है वे इस प्रकार हैं : दृढ़ता, दूसरों की मदद करना, वीरता, अनुशासन, समयबद्धता, कठिन श्रम का महत्व, सामाजिक सेवा और राष्ट्र प्रेम।

प्रस्तावना में सुझाव है कि अध्यापक भाषा का ज्ञान ऐसे तरीकों से दें जो कक्षा में समग्र रूप से चर्चा और अन्तःक्रिया को आसान बनाए। उदाहरण के लिए, बच्चों को महत्वपूर्ण भूमिकाएँ निभाने के लिए प्रोत्साहन देकर न केवल विद्यार्थियों की सक्रिय प्रतिभागिता को प्राप्त किया जा

सकता है, बल्कि उनमें अपनी बात कहने के आत्मविश्वास को भी बढ़ावा दिया जा सकता है। फिर भी पाठों की विषयवस्तु और उसकी प्रस्तुति गम्भीर आशंका उत्पन्न करती है कि विशेषकर कक्षा में शामिल लड़कियों के सन्दर्भ में क्या अध्यापक इन लक्ष्यों को प्राप्त करने में सफल होंगे? पहले उल्लिखित पाठ्यपुस्तकों के 75 पाठों की समीक्षा पर आधारित निम्न आँकड़ों पर विचार कीजिए :

-ऐसे 34 पाठों में, जो कुल मिलाकर विषय-सामग्री का 50% होते हैं, मूल पाठों में केवल पुरुष या लड़कों का ही उल्लेख है। किसी भी महिला चरित्र का उल्लेख नहीं है।

-10 पाठों में, नारी की उपस्थिति या तो सरसरी तौर पर या पारम्परिक किरदारों के निभाने तक सीमित रखी गई है, जैसे माँ या बहन आदि।

-23 पाठों के लगभग, इनसे कम नहीं, केवल सूचना प्रसार के अन्तर्गत रखे गए हैं : यथा 'जनसंख्या विस्फोट' पर उपदेशात्मक अंश, स्वास्थ्यवर्धक भोजन के लाभ और भी इसी प्रकार के अन्य शीर्षक। इसी वर्ग में, ऐसे पाठों को शामिल किया गया था जिनमें दोहे तथा अन्य कविताएँ थीं, जिसमें प्रथम दृष्टि में ही किसी लिंग विशेष का पूर्वाग्रह नहीं हो।

-10 में से लगभग एक पाठ, स्पष्ट तौर पर कहा जाए तो 8 पाठ महिलाओं या कन्याओं को 'एक विशेष दृष्टिकोण' से प्रस्तुत करने की कोशिश करते दिखते हैं, इनमें एक अध्याय तैराकी पर है जो ऐसी महिलाओं का उल्लेख करता है, जिन्होंने इस खेल में प्रवीणता हासिल की है। ऐसे ही एक अन्य अध्याय में, एक लड़की अपने दोस्त को उसके द्वारा की गई प्राणी उद्यान की यात्रा के बारे में लिख रही है। तीसरे में, खेल दिवस का विवरण दिया गया है, जिसमें लड़कियों ने सक्रिय रूप से प्रतिभाग किया। इसके अतिरिक्त, तीन और उल्लेख मिलते हैं, जिनमें नारी को सामान्य से हटकर प्रस्तुत करने का सच्चा प्रयास किया गया है, किन्तु ये क्षुद्र प्रयास भी उनकी स्वयं की अन्तर्निहित समस्याओं के बिना नहीं हैं। तीन में से दो, रानी लक्ष्मीबाई और मैडम क्यूरी की जीवन गाथाओं का उल्लेख करते हैं, जबकि तीसरे में, गाँव में एक लड़की द्वारा अनुभव किए गए पक्षपात का विवरण दिया गया है।

वे महान पुरुष पैदा हुए थे

समालोचना की दृष्टि से यह समझना महत्वपूर्ण है कि किस प्रकार उपलब्धि और सम्मान हासिल करने वालों को इन विवरणों में प्रतिनिधित्व दिया गया है। सम्बन्धित पाठ्यसामग्री में जीवनियों से जुड़े प्रलेख, बचपन के अनुभव, प्रमुख व्यक्तियों के जीवन की घटनाओं से सम्बन्धित पत्र या सन्दर्भ ही दिखाई देते हैं। इनमें अधिकाँश तौर पर 'प्रचलित संशयित व्यक्तियों' का ही समावेश है, जैसे महात्मा गाँधी, लाल बहादुर शास्त्री, राजेन्द्र प्रसाद, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, एडीसन, चन्द्रशेखर आजाद, विक्रम साराभाई, वीर अभिमन्यु, जगदीशचन्द्र बासु, बाबा आम्टे, अर्जुन।

इन महापुरुषों की जीवनियों और उपलब्धियों के विवरण सार्वजनिक हैं। इनके पारिवारिक जीवन या गृहस्थी से जुड़े कोई विवरण नहीं दिए गए हैं। बाबा आम्टे के जीवनवृत्त में यह उल्लेख किया गया है कि इनकी माता जी का इन पर कितना प्रभाव रहा, लेकिन यह तत्कालीन भारतीय समाज में इन महान लोगों के जीवन में महिलाओं द्वारा निभाई जाने वाली प्रचलित सहयोगी भूमिका का एक पहलू है।

इन पुरुषों के जीवन से जुड़ी छोटी सी घटनाएँ भी व्यापक अर्थ से ओत-प्रोत हैं। उदाहरण के लिए, लाल बहादुर शास्त्री के बारे में यह कहा जाना कि उनके द्वारा एक गुलाब के फूल की चोरी पर 'माली' द्वारा दी गई प्रताणना ने उनके जीवन के प्रवाह को बदल दिया, जिसने उनको भविष्य का एक महान नेता बनने के लिए प्रेरित किया। इस घटना को गलत ढंग से काल्पनिक रूप देने के अतिरिक्त, इसमें रुचिकर बात माली द्वारा वस्तुतः बालक लाल बहादुर शास्त्री से कहे गए शब्द थे : “आपके पिता नहीं हैं! आपका व्यवहार बेदाग होना चाहिए। आपको इस गुलाब के फूल की तरह सभी को खुश रखने का प्रयत्न करना चाहिए।”

एक बालक के जीवन में पिता के न होने से निसन्देह गम्भीर उलझनें आ जाती हैं। लेकिन इसका तात्पर्य यह तो नहीं कि वह सबको खुश करता रहे? पिता की अनुपस्थिति को न केवल

नैतिक प्रभाव की अनुपस्थिति समझा जाता है बल्कि इसे एक ऐसे विश्वसनीय व्यक्ति की कमी भी माना जाता है जो बालक को संसार के प्रलोभनों से सुरक्षित रख सकता था। वैसे ही बालक से यह भी आशा की जाती है कि वह समय आने पर पिता द्वारा असामयिक रिक्त किए गए कर्तव्य को वहन करे। दूसरे शब्दों में, परिवार में एक पुरुष मुखिया का उत्तरदायित्व सम्भाल सके।

पुरुष की रोजमर्रा की जिन्दगी, खासकर प्रारम्भिक वर्षों, की बारीकियों में रहस्योद्घाटन, साहस, संकल्प और संघर्ष के महान क्षण समाए होते हैं क्योंकि धारणा यह रहती है कि या तो आप जन्मजात महान हों या बचपन से ही महानता हासिल कर लें।

लड़कियों की आवश्यकता इसलिए है

इन अखण्ड पराक्रमी गाथाओं की तुलना में पाठों में दिए गए दो बहादुर महिलाओं के दबे दबे उल्लेख को देखा जा सकता है।

झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई निस्सन्देह एक महान घुड़सवार और युद्धवीर थीं किन्तु वह असुरक्षित भी थीं— अवसादोन्मुख (अपने पुत्र और पति की मृत्यु के कारण) और सन्देह में खोई हुई (रानी अकसर प्रार्थनाओं में डूबी रहतीं और संसार से निर्लिप्त रहतीं)। यहाँ तक कि जब वह अँगरेजों से लड़ने के लिए वापस आतीं, तो उनको आध्यात्मिक किलेबन्दी करनी पड़ती— कहा जाता था कि वह प्रत्येक सुबह सांसारिक कार्यों को आरम्भ करने से पूर्व प्रार्थना करती थीं। इस प्रकार का कोई भी सन्देह महान व्यक्तियों को नहीं घेरता, वे सभी चुनौतियों का सामना स्थिर विश्वास तथा आत्म-निश्चितता के साथ करते हैं।

यदि नारी को उसके संशय चोट नहीं पहुँचाते, तो उसके लिए उतने ही महत्वपूर्ण दूसरे विकर्षण के केन्द्र हैं। मैडम क्यूरी के मामले में, उदाहरण के लिए, तब भी जब वह स्वयं को प्रयोगशाला में व्यस्त रखती हैं, रासायनिक द्रव्यों, परखनलियों, और प्रयोग में आने वाले जटिल उपकरणों, अपने वैज्ञानिक पति से घिरी होती हैं, हमें बताया जाता है, "मारिया अपने घर का सारा काम

स्वयं करती थी, वह घर को साफ-सुथरा रखती, कपड़े धोती, खाना बनाती तथा बर्तन साफ करती। विवाह के दो साल बाद, मारिया ने एक लड़की को जन्म दिया। इससे उनके कार्य का बोझ बढ़ गया, लेकिन इससे उनके कार्य की गुणवत्ता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।” यह नारी पर पड़ रहे दोहरे भार को प्रकट करने के लिए अच्छे शब्द हैं! नारी के लिए श्रेष्ठतम रूप से सम्भाव्य बनाते हुए यह प्रदर्शित करना कि कोई बहुत कठिन नहीं है यदि वह निश्चय कर लें कि मानवता के हित में गृह कार्य के साथ साथ समाज में भी योगदान दिया जा सकता है। अन्ततोगत्वा, यद्यपि प्रमुख महिलाओं के गृह कार्य सम्बन्धी विचलनों का एक अलग ही अर्थ और उद्देश्य हो जाता है। इनका उद्देश्य साधारण पाठक की दृष्टि में इन महिलाओं को 'सामान्य' बताने का रहता है। दूसरे शब्दों में, यह उन्हें 'वश में करने' और उनके द्वारा मौजूदा व्यवस्था के सामने एक भिन्न महिला के तौर पर खड़े किए गए 'खतरों' को सीमित करने का भाव स्पष्ट करता है। यह महान व्यक्तियों के जीवन की स्तम्भित करने वाली विषमता को दिखाता है, जहाँ पर उनके देवत्वीकरण और सामान्य से बड़ा आकार प्रदर्शित करने पर जोर रहता है, ताकि इनको उच्च पद स्थल पर और सामान्य जन की पहुँच से दूर रखा जा सके।

रानी लक्ष्मीबाई और मैडम क्यूरी की उपलब्धियों के प्रभाव को नियन्त्रित करने की आवश्यकता है। उनके द्वारा खाना बनाने, कपड़े धोने, साफ-सफाई करने, प्रार्थना करने जैसी गतिविधियों में उनकी भागीदारी के द्वारा उन्हें 'सामान्यीकृत' करने की आवश्यकता है। उनको इस संसार की सीमाओं से ऊपर उठाकर, बहुत अलग दिखाने, बहुत प्रतिस्पर्धात्मक दिखाने से बचाया जाए। मैडम क्यूरी का जीवनवृत्त, विक्रम साराभाई और जगदीश चन्द्र बसु जैसे अन्य पुरुष वैज्ञानिकों के जीवनवृत्त से असाधारण रूप से अलग है। यहाँ पर पुरुष न केवल इस बात से भिन्न थे कि उनको क्या प्राप्त करना है और वह क्या कर रहे हैं— एक प्रकार की बड़ी भारी आत्म-निश्चयता, जो वे अन्य महान लोगों से साझा करते हैं— वे घरेलू हड़बड़ाहट से मुक्त थे। इसका उल्लेख भी आवश्यक नहीं कि जीवन में अपने लिए चुने गए क्षेत्र के बावत उनको कोई सन्देह या अवसाद था। झाँसी की रानी की कहानी की अन्तिम लाइन निदेशात्मक है, "अपने *उत्सर्ग* से, रानी ने यह सिद्ध किया कि *यदि आवश्यकता हुई* (निस्सन्देह असाधारण परिस्थितियों में) तो भारतीय महिला भी दुश्मन को कठिनाई में डाल सकती है।”

युवा एवं पुरुष

छोटी बच्ची के सामने इन पाठ्यक्रमों में जो अनुकरणीय चरित्र दिए गए हैं, उनसे एक प्रश्न उठता है। जिस तरह से अन्य विवरणों में नवयुवक छाए हुए हैं उनमें महिलाओं की गाथाएँ न होना और भी अधिक स्पष्ट है। नवयुवकों को नैतिकता और सच्चरित्रता के महान मूल्यों, जिनमें साहस, कठोर श्रम, बहुत सी समस्याओं के बावजूद दृढ़ता और संकल्पशक्ति (जैसे नेत्रहीनता और मातृ-पितृ विहीनता) और अपार बौद्धिक अन्वेषण के लिए प्रयास करते हुए दिखाया गया है। (पर इन सबका नारी शिक्षा के सन्दर्भ में क्या अर्थ है?)

इसी प्रकार, इन तीनों पाठ्यपुस्तकों में नवयुवकों को अधिक गतिशील होने, स्वयं विभिन्न स्थानों की यात्रा करने और अपने नए अनुभवों का विवरण देने तथा उन पर टिप्पणी देने में सफल दिखाया गया है। महिलाओं को इन यात्राओं में जहाँ भी दिखाया गया है उनमें ज्ञान या समझ की कमी दिखाई गई है। उदाहरण के लिए 'तमिलनाडु की यात्रा' नामक पाठ में दिनेश चैन्नई की प्रथम बार यात्रा कर रहा है। उसका मित्र उसे स्टेशन पर लेने के लिए जाता है। इससे पहले कि वे दोनों स्टेशन से बाहर आते, वह अपने मित्र को उसके राज्य की भौगोलिक स्थिति का विवरण देने लगता है। उसके मित्र की पत्नी माया, जो जीवन भर चैन्नई में रही है, कहती है, "भाईसाहब, मैं अपने राज्य के बारे में ये विशेष तथ्य पहली बार सुन रही हूँ। आपको इतना सब कैसे पता है?"

हम यात्रा के वृत्तान्त में आगे बढ़ते हैं और दिनेश की पत्नी मछुआरों द्वारा जाल में पकड़ी गई मछलियों की संख्या देखकर चकित रह जाती है। वह चिल्लाती है -"छी छी ! हे भगवान, कितनी निर्दयता! ये मछुआरे तो इन मछलियों को मारे जा रहे हैं। इन मछलियों ने इनका क्या बिगाड़ा है? ये निकृष्ट मछुआरे इन मछलियों को (रात में) उस समय पकड़ते हैं जब वे सो रही होती हैं।" उसकी टिप्पणी सुनकर, लेखक कहता है- "हम सभी हँसते हँसते पेट पकड़कर लोट-पोट हो गए।"

प्रश्न यह है : यह विवरण कौन और किसको दे रहा है? इन विवरणों में महिलाओं को, अन्य लोगों के सम्बन्ध में किस स्थान पर रखा गया है?

एक वयस्क महिला होने के बाद भी, माया न केवल उस जगह की सूचनाओं से अनभिज्ञ है, जहाँ वह सारी जिन्दगी रहती आई है बल्कि उसकी प्रतिक्रियाएँ भी निष्कपट और निर्दोष हैं, जिन्हें गम्भीरता से नहीं लिया जा सकता। पूरे पाठ में पुरुष विवरणकर्ता की आवाज ही तमिलनाडु के बारे में जानने योग्य सभी जानकारियाँ देती हुई छाई रहती है।

महिलाएँ जैसी होती हैं

महिलाएँ प्रमुखतः माँ के किरदार में ही सामने आई हैं— 'कदम्ब का पेड़' कविता में मातृत्व निश्चित रूप से प्रवाहित हुआ है। अन्य जगहों में, महिलाएँ अपने पुत्रों को राष्ट्र सेवा के लिए बढ़ने की प्रेरणा देती हैं, स्वतन्त्रता संग्राम की आदर्शकृत नारियों की तरह, ऐसी माएँ ही देश की वर्तमान और भावी पीढ़ियों के लिए प्रेरक बनती हैं।

किन्तु इन कहानियों और कविताओं में पुरुषत्व और नारीत्व बहुत सार्थकता से उभरकर आया है। नारीत्व वह है जो प्रकृति के करीब है, अपने स्वभाव के अनुरूप, जबकि पुरुषत्व सांस्कृतिक रूप से संघर्ष और उपलब्धियों से भरा है। उदाहरण के लिए, जब चिड़ियाँ मधुर गाना गाती हैं, परियों के साथ नृत्य करती हैं और उपवन में स्थित मृदु, नाजुक और अतिसंवेदनशील फूलों पर मण्डराती हैं तो वे नारीत्व को अभिव्यक्ति देती हैं।

तृतीय कक्षा के भाषा सम्बन्धी पाठ में एक कथा है— जिसका शीर्षक 'गौरैया के लिए' है—यह छोटे बच्चों को पुरुषत्व और नारीत्व का अर्थ समझाती है।

उसका नाम बलराम था। उसके गाँव का नाम पोखरी था। उसका कार्य कृषि करना था। कठिनाई यह थी कि उसे कृषि कार्य में कोई रुचि नहीं थी। उसके पूर्वजों की सारी जमीन बिना कृषि के ही पड़ी थी। उसे क्या करना चाहिए! उसे रोज ही भूख लगती। वह जंगल चला जाता और फलों को खाकर जिन्दा रहता। जब जंगल के फल समाप्त हो जाते, वह सूखी लकड़ियाँ एकत्र कर लेता और गाँव जाकर उनके बदले रोटियाँ प्राप्त कर लेता। वह किसी भी प्रकार अपना पेट भर लेता। कभी-कभी उसे अपने पूर्वजों की जमीन पर खेती करने का विचार आता, किन्तु खेती करना उसका शगल नहीं था। एक दिन बलराम जंगल में लकड़ियाँ बीन रहा था। एकाएक उसका हाथ किसी *कोमल वस्तु* पर पड़ा। उसे हल्की सी आवाज सुनाई दी। बलराम ने रुचिपूर्ण ढंग से ढूँढना शुरू किया और उसे वहाँ एक छोटी सी गौरैया दिखाई दी। बलराम ने उस गौरैया को उठा लिया। वह बहुत *कमजोर* और *बीमार* थी। उसे लगा कि चिड़िया उससे कुछ कहना चाह रही थी।

उसने सोचा कि चिड़िया अवश्य ही प्यासी होगी और इसीलिए उसने पानी की कुछ बूँदें उसे पिलाईं। उसने उसे खाने के लिए फल दिया। उसने चिड़िया को दिन भर अपने कन्धे पर रखा।

शाम को वह अपने पड़ोसी के पास गया और सूखी लकड़ियों के एवज में कुछ अनाज ले आया। बलराम ने अनाज के दाने चिड़िया को दिए और बोला— "देखो प्रिय पंछी, मेरे घर में रहो। जब तुम ठीक हो जाओ तो तुम उड़कर जा सकती हो।"

चिड़िया बलराम के घर सुखी थी। प्रतिदिन वह उसके कन्धों पर बैठ जाती और जंगल को निकल जाती। रास्ते में वह उसके लिए मधुर गाने गाती। शाम को उसके साथ ही घर चली आती। बलराम गौरैया की बहुत देखभाल करता। अब वह रोज लकड़ी लेने जाता, और लकड़ियाँ बेचकर वह अपने लिए और गौरैया के लिए रोज खाना लाता। दोनों आपस में बातें करते। धीरे-धीरे, बलराम को चिड़िया से प्यार हो गया। उसे एक साथी मिल गया।

जैसे ही चिड़िया स्वस्थ हो गई, उसके उसे छोड़कर जाने की सम्भावना सच हो गई। अन्त में बलराम ने अपने अनुपजाऊ खेतों में काम करना शुरू कर दिया। उसने बहुत कठिन मेहनत की। चिड़िया उतनी देर तक उसके चारों ओर उड़ान भरती रहती।

कुछ समय बीतने पर उसके खेतों में फसल खड़ी हो गई। जब फसल पक गई, तब घर में अनाज की बाढ़ आ गई। बलराम ने यह सब गौरैया को दिखाया और कहा— "यह सब तुम्हारे लिए है। अब

तुमको कहीं जाने की आवश्यकता नहीं है। अब तुम हमेशा मेरे साथ ही रहो।" बलराम की बातें सुनकर गौरैया ने खुशी में गाना शुरू कर दिया (महत्त्व बढ़ाया गया)

क्या यह केवल एक चिड़िया और एक युवक के मित्र बनने की सीधी-साधी और मधुर कहानी है या यह कुछ और भी व्यक्त करती है गौरैया द्वारा बलराम को एक सम्मानजनक और जिम्मेदार व्यक्ति के रूप में परिवर्तित करना, जबकि वह यह सुनिश्चित करता है कि वह (गौरैया) हमेशा के लिए अपने उड़ने की प्रवृत्ति छोड़ दे। उसे केवल अनाज की उपलब्धता सुनिश्चित करने की आवश्यकता थी ताकि उसे रुके रहने का कारण मिल जाए। ठीक उसी प्रकार जैसे अधिकतर महिलाएँ विवाह बन्धन में रहती हैं जिसमें पुरुष खाने-पीने की व्यवस्था करता है।

एक अन्य कहानी में, जिसमें एक काला हिरन एक राजकुमार द्वारा पकड़ लिया जाता है, उसकी महिला हिरन साथी राजकुमार के सामने रोती है। राजकुमार उस महिला-संगिनी के नर हिरन के प्रति प्रेम की तीव्रता देख कर इतना प्रभावित हो जाता है कि वह उस हिरन को छोड़ देने का निर्णय करता है।

इस घटना में प्रबल नाटकीयता है जो ममता और स्वाभाविक प्रेम, जो नारी के स्वभाव का एक अंश है, पर आश्रित है। स्पष्टतः, राजकुमार से की गई मादा हिरन की फरियाद कोई उपलब्धि का संकेत नहीं है। अपने नर हिरन के लिए रोना मादा हिरन की स्वभावगत प्रतिक्रिया है। उपलब्धि के अन्तर्गत लाए जाने के लिए उसमें किसी प्रकार का संघर्ष, विरोधी भावनाओं के अन्तर्द्वन्द्व से ऊपर उठना और हठ निहित होना चाहिए। अर्थात्, राजकुमार हिरन को पकड़ने की अपनी इच्छा को समाहित करते हुए अपनी ओर से ही हिरन को छोड़ने का निर्णय लेता है और बुद्धि चातुर्य से वास्तविक कथा-पुरुष बन जाता है। कठिन नैतिक निर्णय के समक्ष, जिसे राजकुमार को लेने की आवश्यकता होती है, मादा हिरन का भावुकतापूर्ण विस्फोट निर्बल पड़ जाता है।

दोनों कहानियाँ यह दर्शाती हैं कि किस प्रकार महिलाओं और पुरुषों के मत्थे मढ़े गए मानदण्ड प्रकट रूप से अराजनैतिक और सीधे-साधे विवरणों के द्वारा व्यक्त किए जा सकते हैं। क्या यह मनुष्य और पशु के स्वभाव और पशुओं के साथ मानव-सम्बन्धों के बाबत है या सामान्य रूप से घटनाओं के बारे में है जिनमें मनुष्य और पशु एक दूजे के साथ रूबरू होते हैं।

निष्कर्ष

भाषा सम्बन्धी पाठ्यसामग्री के विश्लेषण से यह साफ हो जाता है कि पहले की सरकारों की लड़कियों और महिलाओं को समर्थ बनाने वाली शिक्षा उपलब्ध कराने की सुस्पष्ट नीति की प्रतिबद्धता होने के बावजूद भी, धरातल पर कोई विशेष सुधार नहीं हुआ। क्रियाशील-उदासीन, भावुक और तर्कसंगत, प्रकृति-संस्कृति और निर्भर-स्वतन्त्र की द्विभाजक श्रेणियों के साथ-साथ मर्दाना और जनाना के पारम्परिक अर्थ चलते रहे।

स्पष्ट रूप से प्राथमिक और माध्यमिक स्तरों पर लिंग संवेदनशील सामग्री के लिए उन लोगों से सहयोग लेना जरूरी होता है जिन्होंने नारी के विचारों, विवरणों, अनुभवों और विश्व दर्शन को अकादमिक मुख्यधारा में लाने के लिए संघर्ष किया हो। ज्ञान के इस आधार के बिना, जिन्हें पाठ्यसामग्री पुनः लिखे जाने का उत्तरदायित्व दिया गया है वे या तो किताबों में तस्वीर के रूप में और मौखिक रूप में लड़कियों के चित्रण की संख्या बढ़ाकर या सहज रूप से किरदारों की तब्दीली के द्वारा स्वयं को सतही फेरबदल तक सीमित रखेंगे।

यह सत्य है कि जिन लोगों ने नारी-शिक्षा हेतु ज्ञान सृजित करने के लिए योगदान दिया हो, उनका पाठ्य-पुस्तकों के लेखन से कोई सरोकार न रहा हो और अन्त में यही एक ऐसा अत्यन्त महत्वपूर्ण कारण हो कि हम, लगभग डेढ़ दशक के शब्दाडम्बर के उपरान्त भी पवित्र नीतिगत घोषणाओं से आगे नहीं बढ़ सके।

निस्सन्देह तभी तो लगता है कि हम आगे बढ़ने के बजाए काफी तेजी से अवनति की तरफ जा रहे हैं।

टिप्पणी

1. एस भट्टाचार्या [S Bhattacharya] की 'प्रस्तावना' में उद्धृत, एस भट्टाचार्या, जे बेरा व अन्य (J Bara et al, eds), *Development of Women's Education in India* (1850-1920), जेएनयू, कनिष्क पब्लिकेशन्स, 2001। नैरोजी व कृष्णराव से उद्धृत हिस्सा भी इसी पुस्तक से है।
2. जिन पाठ्यपुस्तकों पर यह बहस आधारित है; *बाल भारती* भाग-3। फरवरी 2000, *बाल-भारती* भाग-5 1994, पुनःमुद्रण-1999 और *सरस भारती* भाग-10, 1998, पुनःमुद्रण, 2001।